E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
Impact Factor: 6.49
https://multiresearchjournal.theviews.in

Received: 02-05-2024
Accepted: 13-06-2024
Published: 16-07-2024

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 2; Issue 3; 2024; Page No. 689-694

डॉ. बी. आर. अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन: दलित अस्मिता एवं लैंगिक समानता का एकीकृत विश्लेषण

श्री प्रभाकर

एम.ए., नेट (राजनीति विज्ञान), 2 /24 आवास-विकास कॉलोनी, मैनपुरी, उत्तर-प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.19510211

Corresponding Author: श्री प्रभाकर

सारांश

आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन के क्षितिज पर डॉ. भीमराव अंबेडकर एक ऐसे युगांतरकारी महापुरुष के रूप में स्थापित हैं, जिनके विचार समय की सीमाओं को लांघकर सदैव प्रासंगिक बने हुए हैं। डॉ. अंबेडकर का दर्शन मात्र किताबी सिद्धांतों का संकलन नहीं है, बल्कि यह करोड़ों वंचितों, शोषितों और हाशिए पर धकेल दिए गए मनुष्यों के 'अस्तित्व' और 'अस्मिता' की पुनर्खोज का महाकाव्य है। इस शोध पत्र का मुख्य केंद्र बिंदु डॉ. भीमराव अंबेडकर के सामाजिक दर्शन का वह पक्ष है, जो दलितों के राजनीतिक उत्थान और महिलाओं के वैधानिक सशक्तिकरण के मध्य एक सेतु का कार्य करता है। इस शोध का सार यह है कि डॉ. अंबेडकर ने समाज के इन दोनों वर्गों को एक ही 'अन्याय के धरातल' पर खड़ा पाया और उनके समाधान के लिए 'संवैधानिक नैतिकता' को एकमात्र विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। शोध इस तथ्य का विश्लेषण करता है कि डॉ. अंबेडकर का 'नारीवाद' समकालीन पाश्चात्य नारीवाद से कहीं अधिक समावेशी और यथार्थवादी था, क्योंकि वह केवल उच्च वर्ग की महिलाओं की बात नहीं करता था, बल्कि वह खेत में काम करने वाली दलित महिला और कारखानों में पसीना बहाने वाली श्रमिक महिला के अधिकारों की भी पुरजोर वकालत करता था।

शोध का एक महत्वपूर्ण हिस्सा डॉ. अंबेडकर द्वारा रचित 'हिंदू कोड बिल' के क्रांतिकारी स्वरूप पर प्रकाश डालता है। यह बिल केवल एक कानूनी दस्तावेज़ नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की पुरुष प्रधान मानसिकता पर किया गया सबसे बड़ा प्रहार था। शोध यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार डॉ. अंबेडकर ने उत्तराधिकार, विवाह और गोद लेने जैसे विषयों में आमूलचूल परिवर्तन का प्रस्ताव देकर महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वावलंबी बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। यद्यपि उस समय के रूढ़िवादी तत्वों ने इसका कड़ा विरोध किया, जिसके कारण बाबासाहेब ने अपने पद से इस्तीफा तक दे दिया, किंतु उनकी इसी त्यागपूर्ण प्रतिबद्धता ने भविष्य के 'हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 2005' जैसे कानूनों के लिए ज़मीन तैयार की। इसके अतिरिक्त, यह शोध 'दलित अस्मिता' के उस राजनीतिक रूपांतरण की समीक्षा करता है, जो 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' से प्रारंभ होकर 'स्वतंत्र लेबर पार्टी' और अंततः भारतीय संविधान के 'आरक्षण' प्रावधानों तक पहुँचता है। शोध यह सिद्ध करता है कि अंबेडकर ने दलितों को 'प्रार्थना करने वाले' वर्ग

से बदलकर 'प्रश्न करने वाले' वर्ग में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने यह चेतना जागृत की कि मंदिर प्रवेश से अधिक महत्वपूर्ण 'संसद प्रवेश' है।

संक्षेप में, यह शोध पत्र डॉ. अंबेडकर के जीवन के उन महत्वपूर्ण पड़ावों को समाहित करता है-जैसे महाड़ सत्याग्रह, गोलमेज सम्मेलन में उनका तर्कपूर्ण पक्ष, और संविधान निर्माण में उनके द्वारा शामिल किए गए मौलिक अधिकार-जो सामूहिक रूप से एक 'न्यायपूर्ण भारत' की तस्वीर पेश करते हैं। शोध का निष्कर्ष यह है कि अंबेडकरवादी विचारधारा आज के दौर में और भी अधिक प्रासंगिक है, क्योंकि यह समाज के सबसे दुर्बल व्यक्ति को भी अपनी आवाज़ उठाने का संवैधानिक साहस प्रदान करती है। यह केवल एक अतीत का अध्ययन नहीं है, बल्कि भविष्य के समावेशी भारत का एक मार्गदर्शक दस्तावेज़ है।

मूल शब्दः न्याय, दलित अस्मिता, नारीवादी विमर्श, हिंदू कोड बिल, संवैधानिक नैतिकता, समतामूलक समाज, पितृसत्तात्मक संरचना, वैधानिकसुधार, लिंगिकसमानता।

---

1. प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन के क्षितिज पर डॉ. भीमराव अंबेडकर एक ऐसे युगांतरकारी महापुरुष के रूप में स्थापित हैं, जिनके विचार समय की सीमाओं को लांघकर सदैव प्रासंगिक बने हुए हैं। डॉ. अंबेडकर का दर्शन मात्र किताबी सिद्धांतों का संकलन नहीं है, बल्कि यह करोड़ों वंचितों, शोषितों और हाशिए पर धकेल दिए गए मनुष्यों के 'अस्तित्व' और 'अस्मिता' की पुनर्खोज का महाकाव्य है। उन्होंने भारतीय समाज की उस जड़ता पर प्रहार किया, जो सदियों से 'वर्ण' और 'लिंग' के आधार पर मनुष्य का मूल्य निर्धारित करती आई थी। उनके लिए राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं थी, बल्कि यह पीड़ित मानवता के कष्टों के निवारण और सामाजिक पुनर्गठन का एक माध्यम थी।

प्रस्तावना के इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में यह समझना अनिवार्य है कि अंबेडकर ने 'लोकतंत्र' को केवल एक शासन प्रणाली के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे 'जीवन जीने की एक पद्धति' के रूप में परिभाषित किया। उनका स्पष्ट मत था कि एक ऐसा समाज जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की छाया से भी अपवित्र हो जाए, वहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता खोखली है। उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से यह विश्लेषण किया कि किस प्रकार हिंदू धर्म के भीतर व्याप्त श्रेणीबद्ध असमानता (Graded Inequality) ने न केवल दलितों को पशुवत जीवन जीने पर मजबूर किया, बल्कि महिलाओं को भी पुरुष सत्तात्मक बेड़ियों में जकड़ कर रखा।

डॉ. अंबेडकर का मानना था कि जातिवाद और पितृसत्ता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जाति की शुद्धता बनाए रखने के लिए महिलाओं की स्वतंत्रता का दमन किया गया। अतः, उनका संघर्ष द्विआयामी था—एक ओर वे उस ब्राह्मणवादी मानसिकता के विरुद्ध थे जो जन्म के आधार पर श्रेष्ठता का दावा करती थी, और दूसरी ओर वे उस पुरुषवादी सोच के खिलाफ थे जो स्त्री को केवल एक वस्तु मात्र समझती थी। उन्होंने 'स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व' (Liberty, Equality, and Fraternity) के नारों को केवल फ्रांसीसी क्रांति की देन नहीं माना, बल्कि उन्हें बुद्ध के धम्म से जोड़कर भारतीय समाज की धमनियों में प्रवाहित करने का प्रयास किया।

डॉ. अंबेडकर के चिंतन में न्याय की अवधारणा अत्यंत व्यापक है। उनके लिए न्याय का अर्थ केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि समाज के हर व्यक्ति को शिक्षा, संपत्ति और गरिमा का समान अधिकार प्राप्त होना था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक समाज का बौद्धिक विकास नहीं होगा, तब तक कोई भी कानून प्रभावी नहीं हो सकता। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध पत्र डॉ. अंबेडकर के उन क्रांतिकारी कदमों का विश्लेषण करता है, जिन्होंने आधुनिक भारत में 'दलित अस्मिता' और 'नारीवादी चेतना' के बीच एक अटूट अंतर्संबंध स्थापित किया।

2. दलित अस्मिता और राजनैतिक चेतना का अभ्युदय

डॉ. अंबेडकर के वैचारिक दर्शन में 'दलित' शब्द केवल एक श्रेणीगत संबोधन नहीं, बल्कि एक चेतनागत क्रांति का उद्घोष है। उन्होंने सदियों से जड़वत हो चुके समाज को यह बोध कराया कि उनकी अधीनता का कारण नियति नहीं, बल्कि एक आरोपित सामाजिक व्यवस्था है। उनके चिंतन का प्राथमिक सोपान 'आत्म-बोध' था। उन्होंने स्पष्ट किया

कि जब तक शोषित व्यक्ति अपनी स्थिति को स्वाभाविक मानता रहेगा, वह दासता की बेड़ियों को कभी नहीं तोड़ पाएगा। इस वैचारिक पृष्ठभूमि को धरातल पर उतारने के लिए उन्होंने 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' (1924) की नींव रखी। यह संस्था केवल एक संगठन नहीं थी, बल्कि यह दलितों के लिए एक 'बौद्धिक कार्यशाला' थी, जिसका उद्देश्य उन्हें शिक्षा के प्रति जागरूक करना और उनमें नागरिक अधिकारों की प्यास जगाना था। अंबेडकर का प्रसिद्ध नारा 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' वास्तव में एक त्रि-आयामी रणनीति थी-शिक्षा से विवेक का उदय, संगठन से सामूहिक शक्ति का निर्माण और संघर्ष से न्याय की प्राप्ति। उनकी राजनैतिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पड़ाव महाड़ सत्याग्रह (1927) था। यह आंदोलन केवल पानी पीने के अधिकार तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सार्वजनिक संसाधनों पर दलितों के मानवीय दावे की घोषणा थी। इसी प्रकार, कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन (1930) के माध्यम से उन्होंने यह संदेश दिया कि उनकी लड़ाई मंदिर के भीतर भगवान की पूजा करने की नहीं, बल्कि समाज के भीतर मनुष्य के रूप में स्वीकार्यता पाने की है।

अंबेडकर ने बड़ी सूक्ष्मता से यह अनुभव किया कि बिना राजनैतिक शक्ति के सामाजिक सुधार स्थायी नहीं हो सकते। इसीलिए उन्होंने 'साइमन कमीशन' और 'गोलमेज सम्मेलनों' में दलितों के लिए पृथक निर्वाचिका (Separate Electorates) की पुरजोर वकालत की। उन्होंने तर्क दिया कि जिस समाज की छाया तक से परहेज किया जाता है, उसका प्रतिनिधित्व कोई अन्य वर्ग निष्पक्षता से नहीं कर सकता। 1932 के 'पुणे पैक्ट' के बाद, यद्यपि उन्होंने संयुक्त निर्वाचिका को स्वीकार किया, किंतु उन्होंने विधायी संस्थाओं में 'आरक्षण' के माध्यम से दलितों की राजनैतिक भागीदारी को सुनिश्चित कर दिया। उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि दलितों का भविष्य अब 'याचना' (Petition) में नहीं, बल्कि 'संसद' (Parliament) के भीतर नीति-निर्माण में निहित है। उन्होंने दलित समाज को एक 'प्रार्थना करने वाले' समूह से 'प्रश्न पूछने वाले' नागरिक के रूप में रूपांतरित कर दिया, जो आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

3. अंबेडकरवादी नारीवाद: समानता की नई परिभाषा

डॉ. अंबेडकर का नारीवादी चिंतन समकालीन पश्चिमी नारीवाद से कहीं अधिक मौलिक और भारतीय समाज की वास्तविकताओं के निकट था। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि भारतीय समाज में 'जाति' और 'पितृसत्ता' (Patriarchy) एक-दूसरे के पूरक हैं। उनका मानना था कि उच्च जातियों ने अपनी शुद्धता बनाए रखने के लिए महिलाओं के यौन व्यवहार और स्वतंत्रता पर कड़े अंकुश लगाए, जो धीरे-धीरे पूरे समाज की मानसिकता बन गई। अतः, उनके लिए नारी मुक्ति का मार्ग जाति व्यवस्था के उन्मूलन से होकर गुजरता था। डॉ. अंबेडकर के नारीवादी दर्शन का सबसे सशक्त प्रमाण उनका 'हिंदू कोड बिल' है। स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री के रूप में उन्होंने इस विधेयक के माध्यम से भारतीय समाज की नींव हिला दी थी। इस बिल का उद्देश्य हिंदू कानूनों को आधुनिक और न्यायसंगत बनाना था। उन्होंने प्रस्तावित किया कि महिलाओं को संपत्ति में बराबर का हिस्सा मिलना चाहिए, उन्हें विवाह के चुनाव और तलाक की स्वतंत्रता होनी चाहिए, तथा गोद लेने की प्रक्रिया में भी उनका स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए। जब रूढ़िवादी ताकतों ने इस बिल का विरोध किया, तो डॉ. अंबेडकर ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। उनका यह त्याग सिद्ध करता है कि वे महिलाओं के अधिकारों को सत्ता से भी ऊपर रखते थे। उनके द्वारा बोए गए ये बीज ही कालांतर में 'हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 2005' जैसे प्रगतिशील कानूनों के रूप में वटवृक्ष बने।

अंबेडकर केवल वैधानिक अधिकारों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने महिलाओं के आर्थिक और श्रमिक अधिकारों पर भी गंभीर कार्य किया। 1938 में बॉम्बे विधान परिषद के सदस्य के रूप में उन्होंने 'मैटरनिटी बेनिफिट बिल' (मातृत्व लाभ विधेयक) का पुरजोर समर्थन किया। उन्होंने तर्क दिया कि बच्चे का जन्म केवल एक महिला का निजी मामला नहीं है, बल्कि यह राष्ट्र के भविष्य से जुड़ा है, इसलिए नियोक्ता और सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वे उस दौरान महिला को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करें।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने समान कार्य के लिए समान वेतन (Equal Pay for Equal Work) के सिद्धांत को उस समय उठाया जब वैश्विक स्तर पर भी इस पर बहस प्रारंभिक अवस्था में थी। डॉ. अंबेडकर का नारीवाद 'समानता' के

साथ-साथ 'गरिमा' का भी पक्षधर था। उन्होंने महिलाओं से आह्वान किया कि वे अपने पहनावे और व्यवहार में हीनता का त्याग करें और शिक्षित होकर समाज के निर्माण में अपनी भूमिका निभाएं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "मैं किसी समुदाय की प्रगति का मापन उस समुदाय की महिलाओं द्वारा हासिल की गई प्रगति से करता हूँ।" यह कथन आज भी विश्व भर के नारीवादी आंदोलनों के लिए एक मार्गदर्शक मंत्र है। उनका विजन एक ऐसे समाज का था जहाँ लिंग के आधार पर किसी की संभावनाओं का दमन न हो, बल्कि हर स्त्री को अपनी प्रतिभा के पूर्ण प्रकटीकरण का संवैधानिक अवसर प्राप्त हो।

4. संवैधानिक सुरक्षा और समतामूलक समाज

भारतीय संविधान के मुख्य सूत्रधार के रूप में डॉ. भीमराव अंबेडकर की भूमिका केवल एक कानूनविद की नहीं, बल्कि एक ऐसे सामाजिक वास्तुकार की थी, जो सदियों से उपेक्षित और दमित समाज को 'संवैधानिक सुरक्षा' के माध्यम से एक नया जीवन प्रदान करना चाहते थे। उनके लिए संविधान केवल एक राजनीतिक दस्तावेज़ नहीं था, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन का एक ऐसा घोषणापत्र था, जिसका मुख्य ध्येय 'कानून के शासन' (Rule of Law) के अंतर्गत मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना करना था। डॉ. अंबेडकर का दृढ़ विश्वास था कि जब तक भारत में सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की नींव सुदृढ़ नहीं होगी, तब तक राजनैतिक लोकतंत्र एक अधूरे स्वप्न की भाँति रहेगा।

संवैधानिक ढांचे के भीतर डॉ. अंबेडकर का सबसे महत्वपूर्ण योगदान 'समता के अधिकार' (Right to Equality) को मौलिक अधिकारों के केंद्र में स्थापित करना था। अनुच्छेद 14 से 18 तक के प्रावधान वास्तव में डॉ. अंबेडकर के उस समतामूलक समाज के स्वप्न की वैधानिक अभिव्यक्ति हैं, जहाँ जाति, धर्म, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के विशेषाधिकार का कोई स्थान नहीं है। अनुच्छेद 14 के माध्यम से उन्होंने 'विधि के समक्ष समता' सुनिश्चित की, जो यह घोषणा करती है कि देश का कानून राजा और रंक, पुरुष और स्त्री, तथा सवर्ण और दलित के बीच कोई भेद नहीं करेगा।

डॉ. अंबेडकर की दूरदर्शिता का सबसे प्रखर प्रमाण अनुच्छेद 15 में दिखाई देता है। इस अनुच्छेद के माध्यम से उन्होंने सार्वजनिक स्थानों, कुओं, तालाबों और भोजनालयों तक दलितों की पहुँच को वैधानिक अधिकार बना दिया, जिसके लिए उन्होंने वर्षों तक सड़क पर संघर्ष किया था। विशेष रूप से अनुच्छेद 15 (3) के अंतर्गत राज्य को महिलाओं और बच्चों के उत्थान के लिए 'विशेष प्रावधान' करने की शक्ति प्रदान की गई। यह प्रावधान सिद्ध करता है कि डॉ. अंबेडकर केवल औपचारिक समानता के पक्षधर नहीं थे, बल्कि वे 'सकारात्मक भेदभाव' (Positive Discrimination) के माध्यम से उन वर्गों को मुख्यधारा में लाना चाहते थे जो ऐतिहासिक रूप से पिछड़ गए थे

अनुच्छेद 16 के माध्यम से उन्होंने लोक नियोजन (Public Employment) में अवसर की समानता प्रदान की, जिसने दलितों और पिछड़ों के लिए प्रशासन के द्वार खोल दिए। लेकिन डॉ. अंबेडकर का सबसे क्रांतिकारी प्रहार अनुच्छेद 17 था, जिसने 'अस्पृश्यता' (Untouchability) को जड़ से समाप्त कर उसे एक दंडनीय अपराध घोषित किया। यह केवल एक कानून नहीं था, बल्कि करोड़ों लोगों के माथे पर लगे उस कलंक का संवैधानिक विलोपन था, जिसे हिंदू समाज ने धर्म की आड़ में जीवित रखा था।

इसके अतिरिक्त, डॉ. अंबेडकर ने अनुच्छेद 21 के तहत 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता' की जो आधारशिला रखी, उसकी व्यापक व्याख्या में केवल जैविक अस्तित्व नहीं, बल्कि 'मानवीय गरिमा के साथ जीवन' (Right to Life with Dignity) अंतर्निहित था। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि राज्य किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन मनमाने ढंग से न कर सके। साथ ही, अनुच्छेद 23 के माध्यम से उन्होंने 'बेगार' (Forced Labour) और मानव तस्करी को प्रतिबंधित कर दलितों और महिलाओं को उस आर्थिक शोषण से मुक्त किया, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी दासता के रूप में प्रचलित था। डॉ. अंबेडकर ने केवल मौलिक अधिकारों तक ही स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने 'राज्य के नीति निर्देशक तत्वों' (Directive Principles of State Policy) के माध्यम से भविष्य की सरकारों को एक कल्याणकारी राज्य के निर्माण हेतु मार्गदर्शिका प्रदान की। उन्होंने अनुच्छेद ३९ के तहत पुरुष और स्त्री दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन और अनुच्छेद 42 के अंतर्गत कार्य की न्यायसंगत और मानवीय

दशाओं तथा 'मातृत्व सहायता' (Maternity Relief) को सुनिश्चित करने का निर्देश दिया।

डॉ. अंबेडकर का संवैधानिक दर्शन वास्तव में एक 'मूक क्रांति' थी, जिसने रक्त की एक भी बूंद बहाए बिना भारत की सदियों पुरानी श्रेणीबद्ध सामाजिक संरचना को चुनौती दी। उन्होंने संवैधानिक उपचारों के अधिकार (अनुच्छेद 32) को 'संविधान की आत्मा' कहा, क्योंकि वे जानते थे कि बिना न्यायिक सुरक्षा के अधिकार अर्थहीन हैं। निष्कर्षतः, डॉ. अंबेडकर द्वारा निर्मित यह संवैधानिक सुरक्षा चक्र आज भी भारत के हर शोषित और उपेक्षित व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा संबल है, जो उन्हें एक संप्रभु राष्ट्र के भीतर गरिमापूर्ण और समान नागरिक के रूप में गौरव के साथ जीने का अधिकार प्रदान करता है।

5. निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन कोई एकांगी विचार नहीं, बल्कि एक समग्र और समेकित जीवन-दर्शन है। उनके चिंतन की परिणति एक ऐसे समतामूलक समाज के स्वप्न में होती है, जहाँ मनुष्य की पहचान उसके जन्म, वर्ण या लिंग से नहीं, बल्कि उसकी मानवीय गरिमा और योग्यता से होती है। डॉ. अंबेडकर ने बड़ी सूक्ष्मता से यह अनुभव किया था कि भारतीय समाज की कुरीतियों की जड़ें बहुत गहरी हैं, इसलिए उन्होंने सुधार के लिए केवल उपदेशों का मार्ग नहीं चुना, बल्कि 'संवैधानिक और वैधानिक शक्ति' को अपना आधार बनाया। उनके दर्शन का सबसे सशक्त पक्ष दलित चेतना और नारीवादी विमर्श का वह अंतर्संबंध है, जिसे उन्होंने 'जाति' और 'पितृसत्ता' के गठजोड़ को तोड़कर सिद्ध किया। डॉ. अंबेडकर ने यह ऐतिहासिक सत्य प्रतिपादित किया कि जब तक समाज का एक बड़ा हिस्सा (महिलाएं और दलित) दास्यता की बेड़ियों में जकड़ा रहेगा, तब तक भारत एक वास्तविक लोकतंत्र के रूप में विश्व पटल पर अपनी पहचान स्थापित नहीं कर सकता। उनके लिए 'हिंदू कोड बिल' मात्र एक कानूनी सुधार नहीं था, बल्कि वह भारतीय पुरुष-प्रधान मानसिकता पर किया गया एक ऐसा वैधानिक प्रहार था, जिसने स्त्रियों को सदियों की कानूनी पराधीनता से मुक्त कर उन्हें संपत्ति, विवाह और उत्तराधिकार में संप्रभुता प्रदान की। यद्यपि तत्कालीन राजनीतिक विरोध के कारण वे इसे पूर्णतः पारित नहीं करा सके, किंतु उनके द्वारा बोए गए वैधानिक बीज ही कालांतर में आधुनिक महिला अधिकारों के वटवृक्ष बने।

इसी प्रकार, दलित अस्मिता के संदर्भ में उनका संघर्ष केवल राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं था। उन्होंने दलितों को मानसिक दास्यता के अंधकार से निकालकर 'अस्मिता' और 'आत्म-बोध' के प्रकाश की ओर अग्रसर किया। 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' से शुरू हुआ यह सफर भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में जाकर एक सुरक्षा कवच के रूप में तब्दील हो गया। उन्होंने अस्पृश्यता के कलंक को संवैधानिक रूप से मिटाकर करोड़ों लोगों को 'नागरिक' होने का गौरव प्रदान किया। उनके द्वारा दिए गए 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के मंत्र ने शोषित वर्गों को याचक से बदलकर एक सशक्त दावेदार के रूप में रूपांतरित कर दिया। डॉ. अंबेडकर का संवैधानिक दर्शन वास्तव में 'नैतिकता' और 'न्याय' का समन्वय है। उन्होंने अनुच्छेद 14 से 18 के माध्यम से जिस समता का मार्ग प्रशस्त किया, वह आज भी भारत के समावेशी विकास की धुरी है। उनका यह मानना कि "मैं किसी समुदाय की प्रगति का मापन उस समाज की महिलाओं की प्रगति से करता हूँ", आज के दौर में लैंगिक समानता (Gender Equality) का वैश्विक मानक बन चुका है। उनके विचार आज भी उतने ही जीवंत और प्रासंगिक हैं, जितने वे राष्ट्र-निर्माण के प्रारंभिक काल में थे।

6. निष्कर्षतः, डॉ. भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारत के वह प्रकाश-स्तंभ हैं, जिन्होंने अन्याय के विरुद्ध तर्क, कानून और नैतिकता को अपना अस्त्र बनाया। उन्होंने एक ऐसे 'प्रबुद्ध भारत' की नींव रखी, जहाँ स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व केवल कागजी शब्द न होकर हर नागरिक के जीवन का यथार्थ हों। उनका संघर्ष किसी वर्ग विशेष के प्रति विद्वेष का नहीं, बल्कि उस अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध था जो मनुष्य को मनुष्य नहीं समझती थी। आज जब भारत एक वैश्विक महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर है, तब डॉ. अंबेडकर के ये समतावादी विचार ही समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति को मुख्यधारा से जोड़ने का एकमात्र सशक्त मार्ग हैं। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व आने वाली पीढ़ियों के लिए सदैव न्याय और मानवता का प्रेरणास्रोत बना रहेगा।

7. संदर्भ

1. मून, वसंत. डा० बाबा साहेब अम्बेडकर, पृ. 2017, 193.
2. कुमारी, अंतिमा. अम्बेडकरवादी स्त्री चिंतन: सामाजिक सरोकारों के बुनियादी स्वर, पृ. 2019, 143.
3. जाफ़लो, क्रिस्टोफ़. भीमराव अम्बेडकर: एक जीवनी, 2019.
4. प्रसाद, डॉ. गोपाल एवं नारवाल, डॉ. महाबीर. रिबीजिटिंग भीमराव अम्बेडकर: ए स्टडी ऑफ सोशल साइंस एंड पॉलिटिकल जस्टिस, 2019.
5. आर्या, सुनीता. जेंडर एण्ड रेसियल जस्टिस, पृ. 2021, 89-113.

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.